एक रात फिर बलिदान

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादकः जनाब सैय्यद हाशिम रज़ा रिज़वी

रात अंधेरी होती है मगर इंसानियत की आँखों में जैसा अंधेरा दसवीं मोहर्रम की सुबह को ख़त्म होने वाली रात को था वैसा कभी नहीं हुआ जब करबला में नाम के मुसलमान इस्लाम के पैग़म्बर का घर उजाड़ने की तैयारी कर रहे थे।

शायद कोई यह सोचे कि 72 भूखों से तीस हज़ार की फ़ौज को लड़ने की तैयारी की क्या ज़रूरत है? मगर ग़ौर कीजिए! इस से पहले जब कूफ़े के लोगों ने इमाम हुसैन के पास बहुत ख़त भेजे तो आप ने अपने चचा के बेटे मुस्लिम को अपना प्रतिनिधि बनाकर कूफ़ा भेज दिया जिनके मुक़ाबले के लिए यज़ीद ने इब्ने ज़ियाद को ख़ास तौर पर कूफ़े का गर्वनर बनाकर भेजा। जिस समय तक अकेले मुस्लिम को गिरफ़्तार करने के लिए इब्ने ज़ियाद ने थोड़ी सी फ़ौज भेजी तो पहली बार उस फ़ौज को हार हुई और उसके अफ़सर ने सहायता के लिए और फ़ौज मंगवा भेजी तो इब्ने ज़ियाद ने उसकी हंसी उड़ाते हुए पुछवा भेजा कि क्या एक अकेले के लिए इतनी फ़ौज काफ़ी नहीं थी? अफ़सर ने जवाब भेजा कि, "क्या तुम समझते हो कि तुमने मुझे कूफ़े के किसी बनिये या कबड़िये से लड़ने के लिए भेजा है? ज्ञात होना चाहिए कि यह बनी हाशिम की खिंची हुई तलवारों में से एक है"।

फिर जब एक अकेले मुस्लिम ने कूफ़े में अपनी ख़ानदानी बहादुरी का लोहा मनवा दिया तो करबला में दसवीं मोहर्रम को तो बनी हाशिम के कम से कम सत्रह अट्ठारह शेर मौजूद थे जिनमें कुछ बच्चे सही मगर अब्बास और अली अकबर ऐसे जवान भी थे और ख़ुद रसूल की वीरता के उत्तराधिकारी इमाम हुसैन थे और उनके साथ सौ डेढ़ सौ सूरमा जिनकी वीरता की गवाही ख़ुद इस्लाम का इतिहास देगा। उनके मुक़ाबले को शाम की फ़ौज कोई आसान बात नहीं समझ सकती थी। अगर और कोई कमज़ोरी उनकी तरफ़ न होती तो विश्वास और धर्म की कमज़ोरी ही बड़ी कमज़ोरी थी जो दिल के साथ क़दम डगमगाने के लिए काफ़ी थी और उसका असर देखा जा चुका था जब वलीद मदीने में यज़ीद की इस आज्ञा का पालन करने में असमर्थ रहा कि या हुसैन से बैअत ले (हुसैन को मजबूर करे कि वह यज़ीद को धार्मिक शासक मानें) या उनका सर काट कर शाम भेजे और मक्का में जबकि अम्र बिन सईद बिन आस की हुकूमत हुसैन के अपने आप को गिरफ़्तारी के ख़तरे से बचाकर निकालने से न रोक सकीं और कूफ़े में भी जबकि नोमान बिन बशीर ने इमाम हुसैन के प्रतिनिधि मुस्लिम बिन अक़ील को 18000 कूफ़ियों से बैअत लेने के लिए आज़ाद रक्खा और पहले ही दिन गिरफ़्तार नहीं किया। यह बातें ही बातें नहीं हैं, एक एतिहासिक सत्य है कि यज़ीद को हुसैन के मुक़ाबले में अपने उद्देश्य के प्राप्त करने के लिए आदमी नहीं मिलते थे और जो मिलते थे उन पर विश्वास मुश्किल मालूम होता था।

आज भी हर धर्म का आदमी इसका अंदाज़ा कर सकता है कि अगर कोई सरकार उनके किसी धर्मशाले की निगरानी किसी उद्देश के लिए आवश्यक समझती हो तो क्या उसी धर्म के लोग इस काम के लिए आसानी से तैयार हो सकते हैं? क्या मस्जिद को ढाने के लिए मुसलमानों पर भरोसा किया जा सकता है या मंदिर गिराने के वास्ते हिन्दुओं से काम लिया जा सकता है? फिर कहाँ मुसलमानों के रसूल का प्यारा नाती और मुसलमानों की ही तलवारें उसका ख़ून बहाएं?

ख़ुद उमर साद का दिल हुसैन से युद्ध पर काँपता था। और अगर शिम्र नवीं मोहर्रम को इब्ने ज़ियाद का क्रोध पूर्ण हुक्म लेकर न आ जाता और उमर को अपने जान-माल का ख़तरा न होता तो वह अब भी इमाम हुसैन से लड़ने पर तैयार न होता, उसकी फ़ौज में हज़ारों आदमी ऐसे थे जो केवल रुपये पैसे की लालच से ही इस काम के लिए तैयार हुए थे मगर वे हुसैन की महानता और सत्यता का उसी प्रकार अनुभव कर रहे थे जिस प्रकार हम दोपहर के सूरज की रौशनी का अनुभव करते हैं। निस्संदेह इस बड़े काम के लिए इस फ़ौज को बड़ी तैयारी की आवश्यकता थी। इधर इमाम हुसैन अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए तैयारियाँ कर रहे थे। और तैयारी करना न होता तो इस एक रात का अवकाश क्यों माँग कर लिया होता। मगर इस तैयारी

के रंग-ढंग कुछ और ही थे। कोई इतिहास-पुस्तक यह नहीं बताती कि इस रात को इमाम हुसैन ने कुछ हथियार जमा किए हों, लड़ाई के लिए घात की जंगहें ढूँढी हों, या लड़ाई का नक़्शा बनाकर अपने साथियों को मुक़ाबले की तरकीबें बताई हों। नहीं। ऐसा भी नहीं ज्ञात होता कि अपने बाद के लोगों के लिए कुछ वसीयतें की हों, अपने घर की स्त्रियों को आने वाली कठिनाइयों के लिए तैयार किया हो जो उन्हें इमाम के बाद सहन करना होगा।

फिर आख़िर आपने यह रात मोहलत माँग कर क्यों प्राप्त की? एक तो यही कि इमाम ने कहा था कि मैं चाहता कि एक रात अपने बनाने वाले की पूजा और कर लूँ और ऐसा ही हुआ कि रात का बड़ा भाग उन्होंने और उनके साथियों ने उस रात के सन्नाटे में इस प्रकार बिताया कि उनकी आवाज़ें यूँ गूँज रही थीं जैसे मधुमक्खी के छत्ते की आवाज़ आती है। इसके अलावा उन्होंने जो काम किए वह यह हैं:-

पहले, अपनी जिंदगी तक अपनी औरतों के पर्दे का प्रबन्ध, उनको अपने शत्रुओं के इस्लाम और सज्जनता की असलियत मालूम थी। वह जानते थे कि ये ऐसे तुच्छ चरित्र वाले हैं इनको अरब क़ौम की ग़ैरत और शर्म का भी कोई लिहाज़ न होगा। कहीं ऐसा न हो कि लड़ाई होते समय यह लोग पीछे की ओर से ख़ेमों पर हमला कर दें। इस ख़याल से उन्होंने एक गहरी ख़न्दक़ (खाईं) ख़ेमों के पिछवाड़े खुदवा दी और उसमें आग जलवा दी ताकि मुक़ाबला एक ही ओर से हो और घिर जाने का भी भय न हो और ख़ेमों पर हमले का ख़तरा भी न रहे।

दूसरी बात यह थी कि उन्होंने अपने सब साथियों को जमा किया। मौक़े की कठिनाई का ख़याल रखते हुए आप सोच सकते हैं कि इमाम हुसैन कोई जोश दिलाने वाला भाषण देंगे और अपने साथियों को कल के मुक़ाबले में क़दम जमाए रखने की शिक्षा देंगे या कल की लड़ाई के सम्बन्ध में प्रस्तावों पर विचार किया जाएगा। मगर नहीं, ऐसा नहीं हुआ। मैं अपने एक रेडियो भाषण में इस घटना का उल्लेख कर चुका हूँ। इस समय आप प्रेमचंद जी के शब्दों को सुनिए।

''रणक्षेत्र जमा हुआ है। हज़रत हुसैन अपने जाँनिसार साथियों को रणक्षेत्र से पलट जाने को कहते हैं, 'मुझे इस पर गर्व है कि अल्लाह ने मुझको आप ऐसे साथी और अनमोल हीरे प्रदान किए हैं। आप ने दोस्ती का हक़ अदा किया। आप ने सिद्ध कर दिया कि सत्य के सामने आप जान और माल को कुछ नहीं समझते। इस्लाम के इतिहास में आपका नाम सदा उज्जवल रहेगा। मेरा दिल इस ख़याल से टुकड़े-टुकड़े हो जाता है कि कल मेरे कारण वे लोग जिनको जिंदा रहना चाहिए शहीद हो जाएंगे। मुझे सच्ची खुशी होगी अगर तुम लोग मेरे दिल का यह बोझ हल्का कर दोगे। मैं बड़ी खुशी से हर एक को इजाज़त देता हूँ कि उसे फैसला करने की पूरी स्वतंत्रता है। मेरा किसी पर कोई अधिकार नहीं है। मैं तुम से प्रार्थना करता हूँ कि इसे स्वीकार करो। यह देखो मैं दिया बुझाए देता हूँ जिसमें किसी को लज्जा न लगे। मगर एक व्यक्ति भी इस दोस्ताना नसीहत से नहीं फ़ाएदा उठाता।

बूढ़ा ज़ुहैर बिन क़ैन सा साथी कहता है, ''अगर मुझको इसका यक़ीन हो जाए कि मैं आपकी सहायता के कारण जिंदा जला दिया जाऊँगा और फिर जिंदा होकर जलाया जाऊँगा और ऐसा सत्तर दफ़ा होता रहे तो भी मैं आपसे जुदा नहीं हो सकता। यही सत्य का प्रेम था जिसने करबला के युद्ध को एक आदर्श धार्मिक महत्व दे रखा है।

यही इस रात की मोहलत लेने से अभिप्राय था कि इमाम हुसैन ख़तरे के सामने होने पर अपने साथियों को अपनी तबीअतों को परखने का मौक़ा दें। कहीं ऐसा न हो कोई व्यक्ति ऐसा रह जाए जो ख़तरे के अचानक सामने आने के कारण मजबूरन उनके साथ रह गया हो।

वह यह भी चाहते थे कि दूसरी ओर की फ़ौज को भी एक रात ग़ौर और विचार करके न्याय और अन्याय को समझने के लिए दे दें। और हुसैन की यह कोशिश बेकार नहीं गई बल्कि इसके द्वारा हुसैन के सिद्धान्त को एक बड़ी जीत प्राप्त हुई जो विश्व इतिहास में स्मरणीय रहेगी।

आप जानते हैं कि जितने कारण दिल बढ़ाने वाले होते हैं वे सब दूसरी ओर की फ़ौज के लिए मौजूद थे, और हुसैन की सेना के लिए हर कारण दिल तोड़ने वाला मौजूद था। फिर भी आपने कभी नहीं सुना (और किसी हालत से ग़लत इतिहास में यह नहीं मिल सकता) कि इधर का एक आदमी भी यज़ीद की फ़ौज से जा मिला हो। लेकिन यज़ीद की फ़ौज का एक हज़ार सवारों का अफ़्सर अपनी सेना को छोड़कर अकेला इमाम हुसैन की ओर आया। यह इसी एक रात की मोहलत का असर था। हुर के दिल-दिमाग़ में रात भर लड़ाई होती रही और आख़िर में सत्य की जीत हुई। यह हुसैनी सिद्धान्तों की वह बेजोड़ विजय थी जो हुसैन की जिंदगी ही में इब्ने ज़ियाद और उसकी तमाम फ़ौज को दिखाई दे गई और यह इसी एक रात की मोहलत का नतीजा था।

●●●